अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

पत्रांक : मेमो / अ0बौ0के0 / 14 / 2020 **दिनांक 03.05.2020**

अष्टावक्र – विश्राम का वेदान्त (3)

कोरोना के कारण अपने भौतिक घरों में रहने के अवसर को हम कैसे वास्तविक घर वापसी – वास्तविक विश्राम में परिणत एवं उपलब्ध कर सकते हैं? इसकी झलक हमें जनक – अष्टावक्र संवाद में मिलती है। यह संवाद कुल 298 सूत्रों में निबद्ध है, जिसे अष्टावक्र संहिता या अष्टावक्र महागीता भी कहा जाता है। जनक के प्रश्न – प्रथम सूत्र से उद्भूत यह संहिता जनक के ही कथन–

''कब चास्ति क्व च व नास्ति क्वास्ति चैक क्व च द्वयम्।

बहुनात्र किमुक्तेन किंचिन्तोत्तिष्ठते मम्।।

298 सूत्र में आपनी पूर्णता प्राप्त करती है। 'बहुनात्र किमुक्तेन' यह पद कि 'अब कहने को कुछ भी नहीं है' घर वापसी का संकेत, विश्रामावस्था का द्योतक है। जनक कहते हैं कि ***''न तो कुछ है और न कुछ नहीं है, कहां एक है और कहां दो? इसमें अब कुछ कहने जैसा नहीं है क्योंकि किंचिन्नोत्तिष्ठते मम् – मुझमें कुछ भी उठ नही रहा है।''*** यह वचन परम विश्रांति का द्योतक है क्योंकि जनक कहते हैं कि उनमें अब कुछ भी उठ नहीं रहा है। कोई तरंग नहीं उठ रही है, निस्तरंगता

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः skt_gpu@yahoo.com

को प्राप्त कर चुका है क्योंकि तरंग तो अधूरेपन की निशानी है, 'अध जल गगरी छलकत जाय', 'थोथा चना बाजे घना'। पूर्णता में आवाज कहाँ गति कहाँ।

इन दोनों जनक–अष्टावक्र के बीच संवाद कुछ इस तरह से दिखाई देता है, प्रारम्भ जनक के प्रश्न से जिनका उत्तर अष्टावक्र ने 2 से 20 सूत्रों में दिया पुनः जनक की अनुभूति 21 से 45 सूत्रों में व्यक्त है, जनक के अनुभूति की परीक्षा एवं विवेचना अष्टावक्र ने 46–59, 66–69, 79–106 सूत्रों में किया, जनक के 60–65, 70–78, 107–125 सूत्रों में कथनों से संतुष्ट होने के पश्चात अष्टावक्र ने 126–276 तक के सूत्रों में पहले के ही सूत्रों के कथनों का विस्तार किया है और अंत में जनक की कृतज्ञता एवं अनुभूति 277–298 सूत्रों में व्यक्त हुई है।

यह प्रबोधन अष्टावक्र संहिता के 1 से 58 सूत्र के मध्य जनक और अष्टावक्र की प्रज्ञा यात्रा तक सीमित है।

घर वापसी हेतु अष्टावक्र ने कहा कि विषयों को विष के समान जानकर छोड़ना होगा और क्षमा, आर्जव, दया, संतोष और सत्य को अमृत के समान मानते हुए सेवन करना होगा। इस घोषणा में ही अष्टावक्र की देशना के सूत्र विद्यमान है। विषयों को विष समान जानकर, अनुभव करके ही छोड़ा जा सकता है। सत्य तो यही है कि यदि हम उन्हें विष के रूप में जान जाते हैं तो उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

बल्कि वे छूट ही जाते हैं। हमने अपने इसी जीवन में ही कितनी बार विषयों को भोगा लेकिन कभी तृप्ति नहीं मिलती इसलिए उसकी पुनरावृत्ति इस अपेक्षा से करते हैं कि शायद पिछले भोग में कुछ कमी रह गयी थी जिसे दूसरे अवसर पर दूर करके तृप्ति हो जाएगी। ऐसा कभी होता नहीं है फिर भी हम विषयों से मुक्त नहीं हो पाते। सदियों से शास्त्र, विषयों से दूर रहने की सलाह देते रहे लेकिन शायद ही किसी मनुष्य ने शास्त्र से पढ़कर उनसे अपना बचाव किया हो। विषयों की भर्त्सना शास्त्रों ने हर सम्भव तरीके से किया है लेकिन मनुष्य बार–बार विषयों के चंगुल में फँस ही जाता है।

विषयों से छुटकारे हेतु अष्टावक्र क्षमा, आर्जव, दया, संतोष और सत्य को अमृत के समान सेवन करने को कहते हैं। क्षमा करने से हम शांत, अउद्विग्न होते हैं, मन लहरों से रहित होता है तथ्य प्रतिविम्बित होने लगते हैं; इसी तरह सीधा–सरलपन, ऋजुता हमें बच्चे के समान निर्दोष रखती है; कठोरता के विपरीत दया, करूणा, तरल होते हैं तथा जीवन के कहीं बहुत निकट होने के कारण जीवन प्रदायी होते है; संतोष– जो है, उससे भिन्न की आकांक्षा न करना, है; समष्टि के ऊपर व्यष्टि की इच्छा का आरोपण न करना, है लेकिन संतोष 'हारे को हरिनाम नहीं' है। संतोष थोपा हुआ नहीं हो सकता बल्कि यह व्यष्टि एवं समष्टि के

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

परस्परतंत्रता के बोध से उत्पन्न होता है। इसी बोध में हमारी जड़े जीवन से जुड़ी रहती हैं, हमारा सम्बन्ध जीवन से बना रहता है, हम सत्य के, अस्तित्व के साथ एक रहते हैं क्योंकि परमात्मा से सम्बन्ध प्रामाणिकता एवं सत्य के आधार पर ही बनता है।

क्षमा, आर्जव, दया, संतोष और सत्य को अमृत के समान सेवन करते ही यह भी अनुभव होता है कि हम न तो पृथ्वी है न ही जल, वायु या आकाश है बल्कि हम, सबके 'साक्षी चैतन्य' हैं। अष्टावक्र कितने क्रांतिकारी है कि केवल एक सूत्र के बाद वे तत्काल 'साक्षी चैतन्य' की घोषणा कर देते हैं और कहते है यदि ***तुम्हे ज्ञान, वैराग्य और मुक्ति चाहिए तो 'साक्षी' होना होगा।*** इस हेतु करना कुछ भी नहीं है मात्र 'देह' से अपने को पृथक कर चैतन्य में विश्राम करना है। इससे तत्क्षण सुख, शांति की 'प्राप्ति' एवं 'बंधन से मुक्ति' हो जाती है। देह से अलग करने एवं चैतन्य में विश्राम करने जो पहली बात स्पष्ट होती है वह यही है कि मैं, कर्त्ता, भोक्ता नहीं हूँ बल्कि वह हूँ जो सब कुछ देखने वाला है 'भीतर' छिपा है। हम जब किसी के सामने बोलते हैं तो हमारा बोलना मात्र यांत्रिक नहीं होता है क्योंकि हम जो बोल रहे होते हैं उसे न केवल सुनते भी है और सुनने वाले के ऊपर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसे भी देखते हैं। यदि यथोचित प्रभाव श्रोता पर नहीं दिखाई देता तो हम

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

बोलने में तद्नुसार परिवर्तन भी कर देते हैं अर्थात बोलने वाला बोलने वाले की प्रक्रिया को न केवल दैहिक उपकरणों के माध्यम से संचालित करता है बल्कि पूरी प्रक्रिया के ऊपर उसका नियंत्रण भी होता है क्योंकि वह उसका साक्षी भी होता है। ठीक यही स्थिति श्रोता की भी होती है क्योंकि सुनने वाला सुनने की यांत्रिक प्रक्रिया के पीछे कहीं स्थित होता है।

'साक्षी' दृश्य एवं द्रष्टा दोनों से भिन्न है। बचपना, जवानी, बुढापा सभी शरीर के तल पर घटित होने वाली घटनाएँ हैं जबकि ईर्ष्या, क्रोध आदि मन के तल की स्थितियाँ हैं। शरीर एवं मन के तल पर जो अनुभूति हो रही है, जिसे हो रही है, इन दोनों के पीछे साक्षी है जहाँ से ही दृश्य एवं द्रष्टा के समस्त व्यापार संचालित होते हैं। साक्षी की न तो कोई वर्ण, जाति, धर्म है न हि कोई आश्रम है वह तो 'असंग एवं निराकार' है, 'साक्षी' हेतु हमें कुछ करना नहीं है केवल 'जानना' है, बोध होना है। क्षण भर के अंतराल की कोई आवश्यकता नहीं है। ***'साक्षी होने' और सुखी होने में कोई अंतराल नहीं है,*** क्योंकि जो भी ज्ञान को उपलब्ध होते हैं वे तत्क्षण होते हैं, 'अभी' होते हैं कल पर यदि टाला तो सदा के लिए टल जाएगा।

अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

साक्षी होने के लिए कुछ करना नहीं होता बल्कि सत्य को जैसा है वैसा ही जानना होता है। यदि यह कृत्य जन्य होता तो अष्टावक्र कभी भी यह नहीं कहते कि तू अभी और इसी वक्त सुखी हो सकता है क्योंकि ***मुक्ति कोई घटना नहीं है***

धर्माऽधर्मो सुखं दुःखं मानसानि न तो विभो।
न कर्त्ताऽसि न भोक्ताऽसि मुक्त एवसि सर्वदा।।

हम सदैव से मुक्त हैं क्योंकि मुक्ति, स्वतंत्रता हमारा स्वभाव है। अस्तित्व इसी से निर्मित है। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए अष्टावक्र आगे के सूत्रों में कहते है कि ''तू सबका एक द्रष्टा है और सदा सचमुच मुक्त है। तेरा बंधन तो यही है कि तू अपने को छोड़ दूसरे को द्रष्टा देखता है।'' अष्टावक्र की दृष्टि में हमारे बंधन का कारण यही है कि हम स्वयं को छोड़ दूसरों को द्रष्टा मानते हैं। हम अपने जीवन को दूसरों की आखों से देखते हैं और उसे ही यथार्थ मान बैठते हैं। यही मान बैठना बंधन का कारण है। दूसरे ने हमें ईमानदार कह दिया तो प्रसन्न और यदि किसी ने बेईमान कह दिया तो दुःखी। इसका सीधा तात्पर्य है कि हम स्वयं नहीं जानते कि हम क्या हैं कौन है? 'एको द्रष्टाऽसि सर्वस्य' विस्मृत हो जाता है और नाना प्रकार के बंधनों में हम स्वयं को पाते हैं। वस्तुतः दूसरे भी हमें हमारी खबर न दे अपनी ही खबर देते हैं और इस प्रकार सभी अपने–अपने बारे में खबर देते हैं

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

और इन खबरों की आभासी दुनिया के परिप्रेक्ष्य में स्वयं को हम घिरा पाते हैं। 'खबरों' की आभासी दुनिया में विरोधी बाते भी होती है, इन सबके संग्रह को हम मान लेते हैं कि यही 'हम हैं'।

अष्टावक्र की स्पष्ट घोषणा है कि व्यक्ति दृश्य नहीं है द्रष्टा है। यहाँ दृश्य, दर्शक, द्रष्टा के भेद का उल्लेख अप्रासांगिक न होगा। दृश्य का अर्थ है जो हम से बाहर वस्तु रूप में है। दृश्य बनते ही व्यक्ति वस्तु में रूपांतरित हो जाता है। वस्तु होते ही हमारी आत्मा, सार तत्व विलुप्त, हो जाती है क्योंकि वह किसी के द्वारा पूर्वनिर्धारित हो जाती है। सार्ब का कथन कि वस्तुओं के परिप्रेक्ष्य '''सार', अस्तित्व का पूर्वगामी होता है।'' अर्थात कोई वस्तु उसी सार को अभिव्यक्त करती है जिसलिए उसका अस्तित्व होता है। वस्तु चाहे भी तो अपने सार को परिवर्तित नहीं कर सकती क्योंकि वह स्वतंत्र नहीं है। किसी मोबाइल में क्या–क्या विशेषताएँ होगी, उसको पहले से तय करके उसका निर्माण होता है और उसमें वे सभी विशेषताएँ निर्माण के बाद वस्तुतः होती भी हैं। लेकिन मनुष्य के संदर्भ में ऐसा नहीं है। दृश्य बनते ही मनुष्य अपने को वस्तु रूप में समझने लगता है और दृश्य की अपेक्षाओं के अनुरूप– विशेषताओं में ढ़ल जाता है। वह ढली–ढलायी सत्ता में बदल जाता है, वस्तु हो जाता है। इसीलिए दृश्य बनते ही हम पाखंडी, झूठे हो जाते हैं।

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

मुखौटे ओढ़ लेते हैं। फिर दूसरी कोटि दर्शकों की है। बहुतायत इन्हीं की है। यह दृश्य हुए मनुष्यों के समान पाखंडी नहीं है लेकिन गुणात्मक रूप से उनसे बहुत भिन्न नहीं होते। पहले प्रकार के व्यक्तियों को दूसरे प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। राजनेता को अनुयायी चाहिए, फिल्म अभिनेता को दर्शक चाहिए आदि। आज के संदर्भ में यदि देखा जाय तो अधिकाधिक लोग मात्र दर्शक बनकर रह जा रहे हैं– घंटों टेलीविजन, कम्प्यूटर के सामने बैठे 'आभास' को देख रहे हैं। बहुत कम लोग 'दृश्य' बन रहे हैं क्योंकि वहाँ कुछ न कुछ करना पड़ता है भले ही स्वतंत्रता खो जाय लेकिन दृश्य बनना तो पूर्णतया निष्क्रिय क्रिया है।

स्थिति तो इस सीमा तक विकृत हो चुकी है कि हम स्वयं प्रेम न करके, प्रेम के छायाचित्रों को देखकर आनन्दित हो रहे हैं। यह कुछ ऐसा ही है जैसे हम स्वयं भोजन करने के स्थान पर भोजन के छायाचित्रों से अपना पेट भरने का प्रयास करें। जिस प्रकार द्वितीय प्रयास में हमें शारीरिक क्षति उठानी पड़ेगी, ठीक उसी प्रकार प्रथम प्रयास के कारण हमें मानसिक क्षति उठानी पड़ेगी। यही कारण है कि आज के मनुष्य की संवेदना लगभग मर चुकी है क्योंकि उसका हृदय रीता है, प्रेम से शून्य है। अष्टावक्र की वेदना है कि वास्तविक मनुष्य न तो दृश्य है और न ही दर्शक बल्कि द्रष्टा है जो इन दोनों का आधार है। उल्लेखनीय है कि दर्शक होना,

अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

द्रष्टा होना नहीं है यद्यपि भाषा की दृष्टि से दोनों का अर्थ एक हो सकता है ***लेकिन अस्तित्वगत अर्थ भिन्न है। दर्शक का अर्थ है कि हमारी दृष्टि दूसरे पर, दृश्य पर है जबकि द्रष्टा में हमारी दृष्टि स्वयं पर होती है।*** एक में हमारी चेतना का तीर दूसरे पर केन्द्रित होता है स्वयं अपने को हम भूले होते हैं जबकि दूसरे में हमारी चेतना का तीर स्वयं की तरफ होता है और दूसरा, समस्त दृश्य विदा हो जाते हें। जब मात्र जागरण, होश रहता है तभी द्रष्टा हुए।

द्रष्टा होते ही बोध होता है कि संसार में द्रष्टा तो एक ही है बहुत नही जबकि दृश्य एवं दर्शक बहुल हैं। उदाहरणार्थ पूर्णिमा का चाँद तो एक है लेकिन पृथ्वी पर जितने भी नदी, तालाब, पोखरे इत्यादि होंगे उन सभी पर उसका प्रतिविम्ब दिखाई देगा। ठीक इसी तरह दृष्टा एक है जबकि दृश्य एवं दर्शक अनेक हैं। इसलिए जैसे ही कोई दृश्य एवं दर्शक से मुक्त होकर द्रष्टा होता है उसे अब न तो कुछ दिखाने की इच्छा होगी कि कोई देखे और न देखने की कोई इच्छा रहती है वह दिखाने एवं देखने के जाल से मुक्त हो जाता है, उसमें उसका रस खो जाता है और **रस का यही खोना ही तो वैराग्य है।** वैराग्य जीवन एवं जगत से पलायन नही है बल्कि उन्हें बोध पूर्वक होश पूर्वक देखने से तत्क्षण वैराग्य घटित हो जाता है, हमारा उनमें रस खो जाता है। द्रष्टा होते ही न केवल वैराग्य घटता है बल्कि

अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

हमें यह भी पहली बार अनुभव होता है कि हम सदा से मुक्त रहे हैं, हम कभी वंधन में थे ही नहीं। आदमी की विडम्बना यही है कि वह संसार को तो सत्य मानता है और सत्य को, अपने वास्तविक स्वरूप–स्वभाव को कल्पना मानता है।

हमें कोरोना का द्रष्टा होना है तभी हम उन समस्त राजनीतिक एवं सामाजिक – समकालीन जीवन एवं जगत के संबंध में उस विश्व दृष्टि को समझ सकते हैं जो कोरोना या इस जैसी अन्य मानव अस्तित्व को ही खतरे में डालने वाली समस्याओं के मूल में होती है।

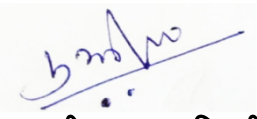

सुशील कुमार तिवारी
(विषेश कार्याधिकारी)
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर।